आलोचना

त्रैमासिक

अंक 63

अक्टूबर-दिसम्बर 2020

मीडिया के राम / विनीत कुमार

प्रतिलोकवृत्त के रूप में स्त्रियाँ / चारु सिंह

राजकमल

पूर्वग्रहों को पोंछता एक साहित्यिक सफ़र

अनुपम कुमार

यात्रा साहित्य का जन्मदाता मानव का घुमक्कड़ी जीवन है। घुम्मकड़ी के बारे में कहा गया है कि यह एक प्रवृत्ति-भर नहीं, कला भी है। देशाटन करते हुए नए देशों में क्या देखा, क्या पाया, यह जितना देश पर निर्भर करता है, उतना देखने और दिखाने वाले पर भी। लेखक और पत्रकार उमेश पंत की हाल ही में प्रकाशित किताब *दूर दुर्गम दुरुस्त* यायावर के बारे में की गई इस टिप्पणी को चरितार्थ करती जान पड़ती है। पूर्वोत्तर की यात्रा में एक नए प्रदेश को लेखक जिस रूप में देखता है, उसी रूप में वह दूसरों को दिखाना भी चाहता है। यह दृष्टि औरों से जुदा है। यहाँ न तो पहले से कोई बनी-बनाई धारणा है और न ही संकीर्ण वैचारिकी। देखने और जानने का यह सफ़र खुले दिलोदिमाग़ के साथ है ताकि वहाँ के लोगों का मन पढ़ा जा सके। बकौल लेखक, "पूर्वोत्तर मुझे उन अनसुनी आहटों की तरह लग रहा था। वो आहटें कैसी होंगी मुझे मालूम नहीं था। कई बार केवल चीखें ही हम तक पहुँच पाती हैं। आहटें सुनने के लिए हमें संवेदनाओं की ज़रूरत होती है। चीख़ों से आहटों की ओर ले जाती यात्राएँ बहुत ज़रूरी होती हैं...। मैंने भी शायद एक ऐसी ही आहट सुनी थी और इसीलिए मैं आहटों का पीछा करने निकल पड़ा था।" गरज़ कि यात्रा-वृत्तांत न तो किसी आर्थिक या राजनैतिक योजना के तहत लिखा गया है और न ही आध्यात्मिक संतुष्टि के लिए। यह पूर्वोत्तर के उस समाज और उसकी अनसुनी-अनकही आवाज़ों को जानने-पहचानने का एक उपक्रम है जिसके बारे में तरह-तरह की धारणाएँ और छवियाँ गढ़ दी गई हैं। यह इलाक़ा भारत के अन्य भागों से सांस्कृतिक और भौगोलिक रूप में ख़ासा भिन्न है। यह भिन्नता 'हम' और 'वे' का एक ज़बरदस्त विभेद रचती है जो बाज़ दफ़ा संघर्ष का रूप अख़्तियार कर लेता है—हिंसा-प्रतिहिंसा और अलगाववादी मुहिम में भी जिसकी अभिव्यक्ति होती है।

यात्रा के सिलसिले में जैसे ही लेखक ट्रेन पर सवार होता है, उन धारणाओं और पूर्वग्रहों की शिनाख़्त शुरू हो जाती है जिनके कारण पूर्वोत्तर के निवासियों के

दिल्ली विश्वविद्यालय के रामानुजन कॉलेज में प्राध्यापक।
संपर्क : anupamhh@gmail.com

प्रति एक ख़ास रवैया या व्यवहार अपनाया जाता है। जैसे पहाड़ से ताल्लुक़ रखने वाले सजवान कहते हैं, "महालक्ष्मी तो बिलकुल मत उतरना। गुवाहाटी स्टेशन फिर भी सेफ़ होगा। मणिपुर और नागालैंड बिलकुल मत जाना। अरुणाचल, मेघालय और असम सेफ़ है। त्रिपुरा में भी कोई दिक़्क़त नहीं है।" इसी तरह, कोच में उत्तर भारत के लोगों के बीच पूर्वोत्तर का एक लड़का बैठा है लेकिन उनसे घुलमिल नहीं पाता। वह कोच में उपस्थित होकर भी अनुपस्थित जैसा बना रहता है। उसकी यह उपस्थित अनुपस्थिति लेखक को अखरती है। उसे लगता है कि इस अलगाव का कारण भारतीय फौजों की पूर्वोत्तर में भारी तैनाती है। भारत में पूर्वोत्तर के समाज से इस अलगाव को लेकर एक फौजी उससे कहता है, "अरे, यहाँ जाना जमराज के यहाँ आना है, जितनी जल्दी निकल जाओ उतना अच्छा।" वह आगे कहता है, "जे.के. तो फिर भी ठीक है, नार्थ ईस्ट बेकार है एकदम।" पर इनके बरअक्स दूसरी छवियाँ भी हैं जिनसे पूर्वोत्तर के असुरक्षित होने की इस धारणा का प्रत्याख्यान होता है।

कहने को तो पूर्वोत्तर एक जैसा है जिसे सात बहनें कहकर संबोधित किया जाता है, लेकिन वह कई तरह की सांस्कृतिक धरोहरों और जनजातियों में बँटा समाज है। अनेकता में एकता की बानगी के रूप में लेखक ने वहाँ की प्रमुख जनजातीय संस्कृति, समाज और उनके इतिहास का रोचक ढंग से वर्णन किया है, साथ ही इसके भी ब्योरे पेश किए हैं कि प्रवासियों की नज़र में वहाँ की कौन-सी जगहें अच्छी हैं, कौन-सी बुरी, और उनके ऐसे 'जजमेंट' का आधार क्या है। कोई जनजातीय समाज प्रवासियों की निगाह में इसलिए बुरा है कि वहाँ गोमांस खाया जाता है, पाश्चात्य संस्कृति और जीवन-शैली का प्रभाव ज़्यादा है। कोई इसलिए अच्छा है कि वह शांत रहकर दूसरों के साथ सहयोग करता है, दूसरों की ज़्यादतियों को बर्दाश्त करता है। पूर्वग्रहों के बीच बने समाज और उसकी सोच का बेहतरीन नज़ारा ट्रेन में देखने को मिलता है जब पूर्वोत्तर से घर लौटते वक़्त पैकेज टूर के तहत गई एक आंटी ट्रेन में कहती हैं, "हमें तो बड़ी बेकार जगह लगी। फालतू में पैसे फूँक दिए।" आंटी शाकाहारी हैं और हिकारत से भरी हुई कहती हैं, "और हैं भी तो ये लोग एकदम कसाई। गाय, भैंस भी सब्जियों के साथ बिक रही होती है। दुकानों में मांस लटका देखकर हमारा तो मन ही ख़राब हो गया। अपनी तो हिमाचल और उत्तराखंड वाली जगहें ही सही हैं। अब यहाँ कभी नहीं आएँगे।" मन में इस तरह की हिकारत अलग-अलग सन्दर्भ में अलग-अलग रूप और आकार ग्रहण करती है। जो भाव या दुर्भाव पूर्वोत्तर के प्रति है, वही कुछ देर बाद एक मुस्लिम परिवार के प्रति पैदा होने लगता है, बाद में बिहार और यूपी के निवासियों पर चला आता है। जब एक यात्री यह भाव अपने प्रति देखता है, तब उसे हिकारत से देखे जाने का दर्द समझ में आता है। लेखक ने इसे यात्रा की कुछ घटनाओं के आधार पर बखूबी पिरोने का काम किया है और इस नतीजे तक पहुँचा है कि सफर खुले दिमाग से किया जाए तो वह मुश्किल रास्ते तय करने में बड़ी मदद करता है।

यह सफ़रनामा गुवाहाटी, तेजपुर, माजुली द्वीप, शिलांग, तवांग, बोमडिला, नागालैंड, मणिपुर आदि जगहों की प्रकृति, संस्कृति और इतिहास के ऐसे ब्योरे पेश करता है जिन्हें हिंदी के मुख्यधारा पाठकवर्ग के लिए दुर्लभ ही कहा जाना चाहिए। कहीं महिलाओं का खुलापन और आत्मविश्वास, कहीं सामुदायिक जीवन की उत्सवधर्मिता, कहीं भाषायी विविधता के घोल से बना जीवन-रस और कहीं अनोखे क़िस्से और मिथक लेखक का ध्यान खींचते हैं। कहना चाहिए कि यह लेखक को चकित कर देने वाली एक यात्रा का पाठक को चकित कर देने वाला वृत्तान्त है। यह कितना आश्चर्यजनक है कि जिस देश में रजस्वला स्त्रियों के मंदिर-प्रवेश पर रोक है, उसी देश के एक हिस्से में, असम के कामाख्या मंदिर में, रजस्वला स्त्रियों की पूजा होती है!

रूढ़ धारणाओं को ध्वस्त करना और एक नई, धुली हुई निगाह देना इस किताब की विशेषता है। लेखक को सामान्य रूप से उत्तर-पूर्व के बारे में ही नहीं, वहाँ की अलग-अलग जगहों के बारे में भी बार-बार कुछ नकारात्मक सुनने को मिलता है और आगे आने वाला उसका अनुभव उस नकारात्मकता का प्रत्याख्यान करता है। जैसे, वह जब नागालैंड के दीमापुर जाने की योजना बनाता है तो एक व्यक्ति की सलाह मिलती है, "कोई जगह नहीं मिली आपको घूमने की? मेरी बात मानो, मत जाओ। सबसे घटिया जगह है।" इसी तरह की बात मणिपुर के बारे में एक विदेशी पर्यटक जूलियन और ड्राइवर भी कहता है। जूलियन का मानना है, "मणिपुर इस नॉट ग्रेट। टू मच सिक्योरिटी। दे स्टॉप यू इन एव्री विलेज। आस्क यू टु गेट डाउन। उफ! नो ट्रस्ट।" ड्राइवर भी उसे यही समझाता है, "मणिपुर में कब कौन किसे गोली मार दे, पता नहीं चलता।" ऐसी बातों को पहले

से मान लेने का मतलब है, खुद को यायावर से अलग, पर्यटक की श्रेणी में डाल देना। इसलिए यात्रा की कठिनाइयों से जूझते हुए लेखक दीमापुर के रास्ते नागालैंड का मशहूर 'हॉर्नबिल फेस्टिवल' देखने चल देता है। वहाँ उस मोरुंग नाम के शैक्षिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थान को देखता है जिसमें जनजातीय समाज की खुशहाली छिपी है और मौजूदा दौर में बदहाली के कगार तक पहुँचे रूप का भी अहसास करता है। कल तक उसके मन में यह छवि बैठाई गई थी कि नागालैंड बहुत घटिया जगह है, और यात्रा के बाद वह सोचता है, 'काश, नागाओं के इस देश को एक बार उसे अपनी नज़रों से दिखा पाता।'

इनसे गुज़रते हुए यात्रा-वृत्तांत के बारे में कही गई मोहन राकेश की वह बात याद आना स्वाभाविक है कि यह व्यक्ति को तटस्थ नज़रिया देता है। एक नए वातावरण में जाकर व्यक्ति कुंठामुक्त हो जाता है और अपने निकट वातावरण के दबाव से मुक्त होकर नए स्थानों, नए लोगों से संबंध स्थापित करता है।

करीब माह-भर की यात्रा को डायरी शैली में प्रस्तुत करता यह यात्रा-वृत्तांत भाषा के नए तेवर और भाव-भंगिमा के कारण सामान्य यात्रा-वृत्तांतों से भिन्न है। यहाँ आज की पीढ़ी के युवाओं की भाषा है। शुद्धता और शालीनता की अपेक्षा रखने वाले पुराने मिज़ाज के पाठकों को यहाँ निराशा हाथ लगेगी। अंग्रेजी शब्दों, वाक्यों और लहजे को पूरे ताव के साथ रखा गया है। अंग्रेजी ही नहीं, हिंदी में भी लोगों की जुबान अपनी आंचलिक विशेषताओं के साथ है। जीवन में उपजे आक्रोश की अभिव्यक्ति अपशब्दों और गाली गलौज के साथ है जिसे शुद्धतावादी लेखक वर्जित मानते हैं। यह सिलसिला शुरुआती ट्रेन यात्रा से ही शुरू हो जाता है। पंजाबी, गुजराती, बंगाली या पहाड़ से संबंध रखने वाले लोग, फौजी और बिजनसमैन—ये सब अपने लबो-लहज़े में अलहदा हैं और एकदम से पहचाने जा सकते हैं।

पठनीयता शुरू से आख़िर तक है। तथ्य और सूचनाएँ पाठ को बोझिल न कर दें, इसके लिए समानांतर रूप से किस्सों-कथाओं का सिलसिला चलता रहता है। ये कभी किसी पत्रकार दोस्त या परिचित यायावर की ओर से आते हैं तो कभी किसी ऐसे अजनबी की जुबानी जो अपनी बात रखने में संकोच नहीं करता। यह अवश्य है कि प्रस्तुति की यह कला कई बार जिंदगी या घटनाओं को बहुत सरलीकृत कर देती है। दुनिया इतनी सरल, सहज और एकायामी नहीं है। किसी भी घटना, परिस्थिति या परिवेश के मुख्तलिफ़ रूप इतने जटिल और परस्पर विरोधी होते हैं कि उनकी ठीक-ठीक शिनाख़्त आसान नहीं होती। इसके लिए बड़ी और बहुआयामी दृष्टि की ज़रूरत होती है।

लेखक की नज़र से पूर्वोत्तर को देखने पर वहाँ की जिंदगी संघर्षपूर्ण होते हुए भी कई मायनों में शांत और सौहार्दपूर्ण प्रतीत होती है। दर-हक़ीक़त ऐसा शायद है नहीं। पूर्वोत्तर के निवासियों के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में संघर्ष की कई धाराएँ और अंतर्धाराएँ हैं। कई तरह के राजनीतिक और सामाजिक उतार-चढ़ाव हैं। यह पुस्तक उस जटिलता की ओर जाने की मुश्किल और जोख़िम से किसी हद तक बच निकलती है। लेकिन ऐसी समझ ज़रूर विकसित करती है जिससे पूर्वोत्तर के प्रति अपनापन पैदा हो सके। किसी इलाक़े या समाज के प्रति जो धारणाएँ और पूर्वग्रह की परतें जमी हुई हैं, उसे यह आख़िर तक चिह्नित करती चलती है। लेखक के अनुभव और आँखों देखे सच से आप सहमत या असहमत हो सकते हैं, लेकिन उसके उपागम/एप्रोच को ख़ारिज नहीं कर सकते। यह उपागम है, मानव समाज को भेदभाव और दुर्भावनाओं से रहित होकर देखने का। यही इस यात्रा की उपलब्धि भी है और इस पुस्तक का मक़सद भी।

('दूर दुर्गम दुरुस्त', उमेश पंत, सार्थक, राजकमल प्रकाशन का उपक्रम)